पक्षधर

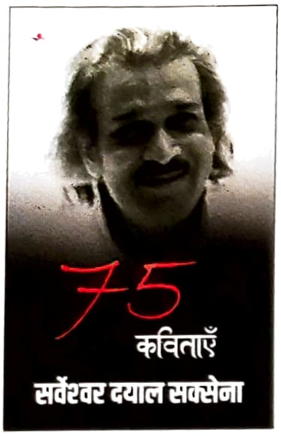


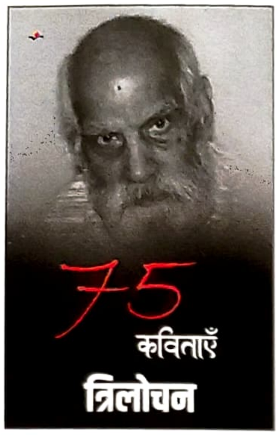
अंक

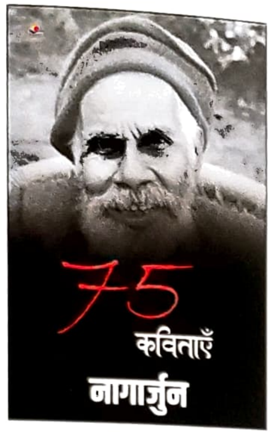
37

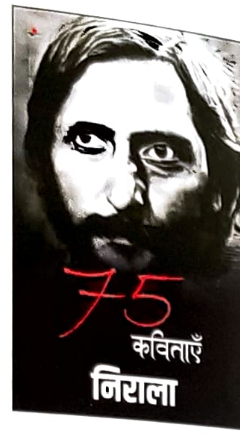
जुलाई-दिसंबर, 2024

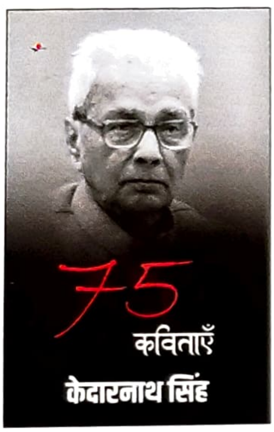
2025 नए प्रकाशन

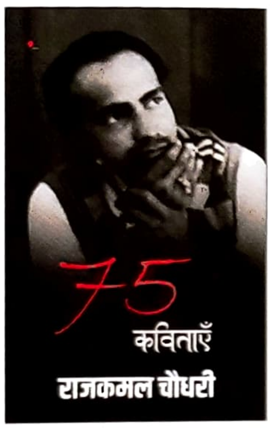


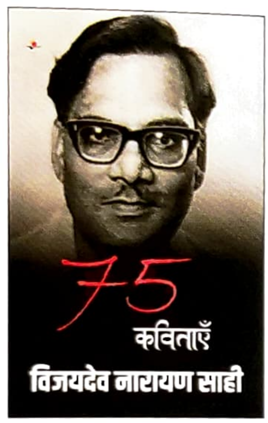


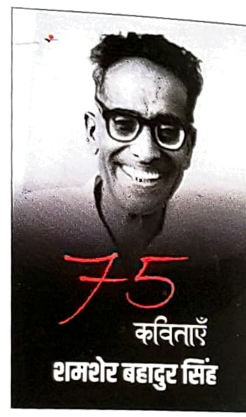


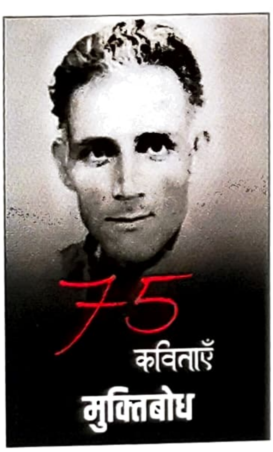


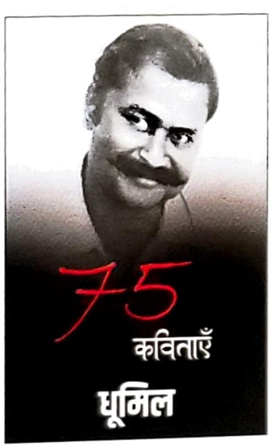


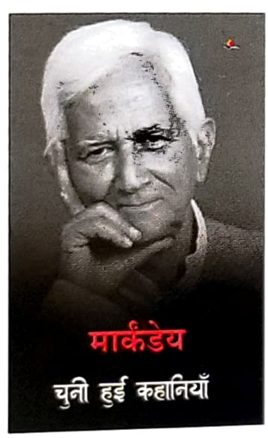


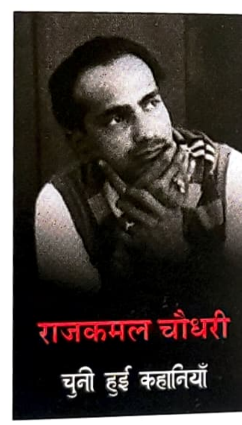












नयी किताब प्रकाशन समूह

1/11829 पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
9811388579, 9971895162
E-mail : nayeekitab@gmail.com, prakashanananya@gmail.com
Website : www.nayeekitab.in
nayee_kitab_prakashan @nayeekitabprakashan @nayeekitab 9205155356

संस्थापक संपादक : दूधनाथ सिंह

पक्षधर

प्रतिरोध की संस्कृति का रचनात्मक हस्तक्षेप

वर्ष : 18 अंक : 37 जुलाई-दिसम्बर, 2024

संपादक

विनोद तिवारी

पक्षधरता का संबंध मनुष्य के विश्वबोध और सद्-असद्
विवेक-बुद्धि अर्थात् अंतरात्मा के विवेक से है।

अक्षर संयोजन

कम्प्यूटेक सिस्टम
ई-17, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32
आवरण चित्र : अंतरिक्ष

मूल्य :

एक प्रति	:	₹ 200 (व्यक्तिगत) ₹ 250 (संस्थागत)

सदस्यता :

वार्षिक (व्यक्तिगत)	:	₹ 500 (डाक खर्च सहित)
वार्षिक (संस्थागत)	:	₹ 600 (डाक खर्च सहित)
पंचवार्षिक	:	₹ 3000
आजीवन	:	₹ 10000
विदेश के लिए	:	$ 100 (वार्षिक)

भुगतान हेतु बैंक-खाता विवरण :
A/c Name / No. : Pakshdhar / 31266280438
Bank : SBI / IFSC-SBIN0001067

संपादन/प्रकाशन : अवैतनिक/अव्यावसायिक

स्वामी-संपादक-प्रकाशक-मुद्रक **विनोद तिवारी, सी-4/604, ऑलिव काउंटी, सेक्टर-5, वसुंधरा, गाजियाबाद-201012** के लिए बी.के. ऑफसेट, एफ-93, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 से प्रकाशित और मुद्रित।

सम्पर्क :

सी-4/604, ऑलिव काउंटी, सेक्टर-5,
वसुंधरा, गाज़ियाबाद-201012
मो. 09560236569
ई-मेल : pakshdharwarta@gmail.com
वेब पता : www.pakshdhar.com

PAKSHDHAR : **ISSN :** 2231-1173
A Bi-Annual Literary Magazine
Editor : Vinod Tiwari
Language : Hindi

अनुक्रम

नोटबुक

कविताएँ

बाहरी दुनिया

समीक्षाएँ

प्रकृति, स्त्री और शाकाहार
(संदर्भ : साहित्य का नोबेल : 2024)

'मैंने एक सपना देखा।' उसके मांसाहार छोड़ने पर पति, पिता, भाई, सभी उससे जितनी बार पूछते हैं, उतनी बार उसका शांत और दृढ़ ज़वाब यही होता है–'मैंने एक सपना देखा।' न एक शब्द कम न एक शब्द अधिक। और आखिर में सपना देखने वाली स्त्री जब यह कहते हुए कि–'मैं जानवर होने से बच गयी'–अपने चयन और निर्णय में मर कर भी जीवित रहती है, मरजीवा हो जाती है तो जैसे परंपरावादी, जड़ और नियंत्रणकारी पशु समाज के ख़िलाफ़ उसका मौन और अहिंसक विद्रोह जीत जाता है। यह 2024 में साहित्य के नोबेल सम्मान से सम्मानित दक्षिण कोरियाई उपन्यास 'दि वेजेटेरियन' (लेखक हान काँग) की नायिका येओंग-ह्ये की कहानी है। एक ऐसी महिला की कहानी, जिसमें शाकाहार के बहाने एक स्त्री अपनी चाह, चयन और स्वतंत्र निर्णय के लिए पागलपन की हद तक जाती है। घर-परिवार में उसे पागल करार दे दिया जाता है। किन्तु, पूरा उपन्यास पढ़ लेने के बाद साफ़ होता है कि मांसाहार छोड़कर शाकाहार अपनाना तो सचमुच एक बहाना था। असल में तो यह उपन्यास एशियाई पितृसत्तात्मक समाज की सघन शिल्प और काव्यात्मक गद्य में रची गई एक तीखी आलोचना है, जहाँ समाज द्वारा हर एक चीज़ का एक औचित्यपूर्ण स्थान निश्चित और पूर्वनिर्धारित है। अगर, कोई (ख़ासकर एक स्त्री) उस निश्चित और पूर्वनिर्धारित चौखटे के ख़िलाफ़ विद्रोह करता है, वह विद्रोह; चाहे कितना भी नुकसानरहित ही क्यों न हो, सभी के लिए मुश्किलें पैदा करता ही है। हान काँग ने अपने इस उपन्यास के जरिए दक्षिण कोरियाई समाज की इन्हीं मुश्किलों को चुनौती दी है। स्त्री के प्रति पारंपरिक सामाजिक संरचना को लेकर हान सवाल उठाती हैं। नोबेल सम्मान प्राप्त करने के समय साक्षात्कारकर्ताओं द्वारा जब उनसे उपन्यास को लेकर सवाल-ज़वाब हो रहे थे, तो एक सवाल के ज़वाब में हान ने कहा कि "उपन्यास लिखना मेरे लिए सवाल पूछने का एक जरिया है। मैं अपने लेखन के जरिए अपने समय-समाज के दर्दनाक किन्तु महत्वपूर्ण सवालों में रहने की कोशिश करती हूँ और उन सवालों के ज़वाब खोजने,

पाँच कविताएँ

राकेश कुमार मिश्र

गुमनाम लेखक

(हिंदी के महत्वपूर्ण रचनाकार शैलेश मटियानी को समर्पित)

वह स्मृतियों को खाता है दिन-रात कुतर-कुतर कर
यश के सर्वोच्च शिखर से आने वाली घोषणाओं को सुन
हल्का मुस्कुरा देता है
कोई पत्र नहीं आता अब उसके पास
वह किसी गुट के आमंत्रण सूची में नहीं
किसी किताब के उतार-चढ़ाव में
कोई भूमिका नहीं उसकी
साहित्यिक अवदान की खोज-ख़बर रखने वाले आलोचक भी
अब उसका ज़िक्र नहीं करते
वह गुमनामी से नहीं
इस समय के घुटन से परेशान है
वह घण्टों रह सकता है अपने साथ
ऊब सकता है
सो सकता है उदासी की खाई में
कुछ होने के लिए किए जाने वाले
अनिवार्य अभिनय को ठुकरा सकता है
कुछ होने के क्रम में हो सकता है सिर्फ़ लेखक

वह नहीं लिखता ताक़तवर लोगों की भाषा में
उस भाषा में लिखता है वह
जिसके नसों में बहता है असंख्य श्रमिकों का गीत
इसी भाषा में दर्ज़ करता है वो
पंक्ति में खड़े आख़िरी आदमी की पहली रुलाई
कस्बों के ताप से तपा है उसका जीवन
चमकते शहरों ने कभी उसे नहीं खींचा अपनी ओर
अपने कस्बे के बुज़ुर्ग कुली से मिलने जाता है अक्सर
और वो अब भी लिखता है
चिड़ियों और दरख़्तों के लिए
अपने ज़िंदा होने की घोषणा करते हुए
एक दिन जब शब्द नहीं देंगे उसका साथ
तब वो बनायेगा बच्चों के लिए खिलौने
और सीखेगा चित्र बनाना।

संत लोग

(बड़का पापा और जोधपुर की देन डॉ. राजपाल सिंह शेखावत के लिए)

मान-अपमान की ध्वनियाँ नहीं पहुँचती हैं संत लोगों तक
चार रोटी के साथ दो शब्द
और एक पूरा दिन ख़त्म
अपने लोगों के बीच में न्यूनतम जगह में रहते हैं
ये लोग
दिन के उजाले में अक्सर ग़ायब मिलते हैं
रात में किसी चोर दरवाज़े से घुसते हैं घर में
खाते हैं दोपहर का बचा खाना
और किसी उमस भरी रात में रखते हैं
पत्नी के ठंडे पेट पर अपना हाथ
संत लोगों की पत्नियाँ उनके अनुपस्थिति की हो गई हैं आदी
उनके बच्चे उन्हें पिता कहना हज़ारों साल पहले छोड़ चुके
वो सुख-दुःख से अनासक्त
अक्सर मिलते हैं रेडियो सुनते हुए
राजनीतिक उठापटक और घरेलू योजनाओं में इनकी
कोई दिलचस्पी नहीं
गाँव की छमाही शादियों में भी जाते हैं बहुत कम
बाज़ार, भीड़ और बैठक से रहते हैं कोसों-दूर
ये लोग कहीं नहीं जाते

हर बार लौटने के लिए
जाते हैं सिर्फ़ घर के फुलवारी तक
चाहे घर में मार-काट हो या बँटवारा
कोई नहीं पूछता इनसे उनकी राय
ये लोग कुछ इस तरह मौजूद हैं
जैसे इनका होना कोई अपराध हो
ये लोग बस ज़िंदा हैं
पर कहीं नहीं हैं।

साज़िश

किसी साज़िश के तहत ढ़ेर सारे शब्दों पर थोप दिए गए स्थायी अर्थ
कुछ मुठ्ठी भर ताक़तवर लोग चाहते हैं
हम भूल जाए किसी शब्द से जुड़े ढ़ेरों छाया, आवाजें, रंग और उम्मीद
हमें 'लाल' रंग के बारे में सोचते हुए
सिर्फ़ खून के धब्बे या कफ़न याद आए
हमें कभी याद ना आए कोई फूल, दोस्त की कमीज़
या किसी लड़की का पुराना स्वेटर
इतनी हिंसा और घृणा भर देना चाहते हैं वो इस दुनिया में
हम किसी शब्द की आदिमता और संभावना तक पहुँच ही ना पायें
किसी डूबे जहाज़ का नाम है उम्मीद
वो दोहराते हैं बार-बार
कितना अच्छा हो और ये ज़रूरी भी है कि हम मानें
अपने भीतर इस विश्वास को जगह दें
कोई जहाज़ अब तक नहीं डूबा
बहुत चालाकी से उम्मीद को छीना गया हमारे जीवन से
इस दुनिया में जितनी भी खूबसूरती बची है
उसमें हक़ है हम सभी का
उस हिस्से को खोजा जाए
उस आश्चर्य को ज़िंदा रखा जाए अपने भीतर।

कलह

आँगन के बीच में पड़ी है लाश
जो सड़ रही है लगातार
जीवन में जो कुछ था कोमल
वो सबकुछ ख़त्म हो रहा है

तेजी से
संबंधों के दरवाज़े पर लगा था जो फटा पर्दा
कोने में अब वो पड़ा है उदास
भोजन से ग़ायब है स्वाद
हर मौसम है अब प्रतिशोध का मौसम
हर पर्व है अब हथियारों को पैना करने का अवसर
एक समझदार चुप्पी ओढ़े हुए मेरे 'आत्मीय जन'
इंतज़ार करते हैं मेरे ग़लतियों का हर क्षण
जो प्रहार करेगा वहीं बचेगा
इस अनुभव के दस्तक के बाद
अब बेहद कम रह गई है कविता
मेरे जीवन में।

खेडुत*

जब-जब गुजराती के इस शब्द के पास जाता हूँ
नाकों में भर जाता है
पसीने का तीखा गंध

शब्द सिर्फ़ ध्वनि नहीं
गंध भी हैं
इस समझ के सहारे आगे बढ़ते हुए
इस शब्द को मिट्टी से सना हुआ पाता हूँ

चिलचिलाते धूप में
पसीने से लथपथ
खुले आसमान के नीचे
किसी किसान के मुँह से
निकला होगा ये शब्द

किसी बैल की घण्टी ने स्वागत किया होगा
इस शब्द का सबसे पहले

इस शब्द के साथ रहते हुए
भारतीय भाषाओं के वैभव को

* खेडुत—किसान

सलाम करता हूँ
और अपने पूर्वजों को याद करता हूँ
जो किसान थे।

संपर्क : असिस्टेंट प्रोफेसर, अंग्रेज़ी विभाग, एम. एन. कॉलेज, विसनगर, मेहसाणा (उत्तर गुजरात)-384315
मो. : 8758127940